द्वितीय अध्याय

उपन्यास और शिल्प

शिल्पविधि का अर्थ व स्वरूप

शिल्प और शैली

हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास

प्रारम्भिक उपन्यासों का शिल्प

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का शिल्प

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का शिल्प

स्वातंत्र्योत्तर युगीन उपन्यासों का शिल्प

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

द्वितीय अध्याय

उपन्यास और शिल्प

उपन्यास हिन्दी साहित्य का प्रतिनिधि साहित्य रूप है। यह आज एक लोकप्रिय विधा है। उपन्यास में उपन्यासकार मानव जीवन एवं उसकी विभिन्न घटनाओं की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न प्रकार की विधियों को अपनाता है। ये विधियाँ ही उपन्यास की शिल्पविधि कहलाती हैं। शिल्पविधि के सम्बन्ध में डॉ. सुरेश सिन्हा लिखते हैं– "उपन्यास शिल्प से अभिप्राय कला के उन सिद्धान्तों से है, जिनके आधार पर उपन्यास की रचना होती है।"[1] उपन्यासकार उपन्यास में सजीवता लाने के लिए विभिन्न तरीकों को अपनाकर उपन्यास साहित्य की रचना करता है। वह किसी भी उपन्यास की शिल्पविधि के लिए विभिन्न तत्वों का सहारा लेता है। ये तत्व वस्तुगत शिल्प अथवा कथावस्तु, चरित्र शिल्प, वातावरण शिल्प, भाषा एवं शैलीगत शिल्प एवं उद्देश्यगत शिल्प हैं। इन पाँच तत्वों के आधार पर ही उपन्यासकार अपनी रचना का सृजन कर उसे पाठकों के सम्मुख रखता है।

शिल्पविधि का अर्थ व स्वरूप : शिल्पविधि का आशय किसी वस्तु को बनाने के लिए प्रयुक्त की गयी रचनाविधि से है। जब कोई कलाकार किसी चित्र को विभिन्न रंगों के माध्यम से कैनवास पर उकेरता है तो उस चित्र को बनाने में उसे विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे लाइनें खींचना, रंग भरना आदि, से गुजरना पड़ता है। उस चित्र को बनाने में उसने कौन–कौन से कार्य किए और किस प्रकार वह चित्र तैयार हुआ? यह सब उसकी शिल्पविधि कहलायेगी। इसी प्रकार एक साहित्यकार अपने मन में उत्पन्न होने वाले विभिन्न भावों को प्रकट करने के लिए जिस ढंग या तरीके को प्रयोग में लाता है, वह रचना पद्धति ही उसकी शिल्पविधि कहलाती है। अर्थात अपनी अनुभूतियों और मनोभावों को अभिव्यक्त

---

1 'हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास' : डॉ. सुरेश सिन्हा, पृष्ठ – 10

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

करने के लिए एक कलाकार जो साधन अपनाता है वह साधन ही उसका शिल्प कहलाता है।

शिल्पविधि शब्द के लिए अंग्रेजी में टैकनीक शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है 'रचना पद्धति'। जैनेन्द्र ने शिल्पविधि की व्याख्या करते हुए लिखा है– "टैकनीक साहित्य सृजन में योग देने के लिए है।" 'काम्बेल' शिल्प के सम्बन्ध में लिखते हैं "अच्छे तकनीक का अर्थ है सही बात, सही ढंग से उपयुक्त समय पर प्रस्तुत करना।"[1]

कलाकार कला के माध्यम से ही अपनी अनुभूतियों और मनोभावों को व्यक्त कर उन्हें दूसरों तक पहुँचाता है। "कला वह क्रिया है जिसकी सहायता से कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति एवं मनोभाव दूसरों तक पहुँचाता है।"[2] लेकिन इसमें कला का माध्यम भिन्न–भिन्न होता है–मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत, नृत्य, नाटक, काव्य आदि अनेक माध्यमों से कलाकार अपने मनोभावों को प्रकट करता है और इन माध्यमों के द्वारा ही वह दूसरों तक पहुँचते हैं। कलाकार के मनोभावों में परिवर्तन होते रहता है। इन्हीं परिवर्तनों के फलस्वरूप कलाकार को नवीन विषय सामग्री मिलती रहती है और प्रत्येक सामग्री की पृथक शिल्पविधि होती है। क्योंकि एक कलाकार अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए नित नवीन सामग्री अपनाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. रूथ लिखते हैं– "कला को निरन्तर नवीनीकृत होते रहना चाहिए। उसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्य तत्व पर निर्भर करता है। एक बार जब उपस्थापन की सद्यता या नव्यता फीकी पड़ी कि पाठक उससे विमुख होकर अपने दैनिक कार्यों में न्यस्त हो जाता है।"[3]

---

1 "Sound technique means doing the right thing in the right way at the right time". 'Writing Advice and Devices' : Walter S. Combell Doubleday

2 "Art is an activity by means of which one man having experienced feeling intontionaly transmits it to other" 'What is Art' : Count Leo Tolstoy, Oxford University Press, Page -6

3 "Art must always be renewed. Its crative influence depends on susprise. When once the freshness of the presentment has faded the reader stopses into his daily habits." 'English Literature and Ideas in the Twentieth Century' : Dr. H.V. Routh, Page-2

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

कुछ विद्वानों ने शिल्पविधि की व्याख्या आन्तरिक और बाह्य दो भिन्न–भिन्न स्वरूपों में की है–

शिल्पविधि के आन्तरिक स्वरूप के अन्तर्गत साहित्यकार के मन में उठने वाली विभिन्न विधियों एवं तकनीकों को शामिल किया जाता है, जिससे साहित्यकार साहित्य सृजन करता है। साहित्यकार अपने मनोभावों का विश्लेषण कर उसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। शिल्पविधि का यह रूप अप्रकट रहता है, जिसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कार्नर लिखते हैं "टैकनीक ही वह माध्यम है, जिसके कारण साहित्यकार की अनुभूति, जो साहित्य का विषय है, उसे इसकी ओर ध्यान देने के लिए मजबूर करती है। उसके पास टैकनीक ही ऐसा साधन है, जिसकी सहायता से वह अपने विषय की खोज, जाँच पड़ताल और विकास कर सकता है तथा इसका अर्थ समझाते हुए इसका मूल्यांकन कर सकता है।"[1]

कार्नर रचना सामग्री को इकट्ठी करने और उसे सुगठित रूप से प्रस्तुत करने को ही शिल्प नहीं मानते हैं, वह मनन एवं विश्लेषण द्वारा नवीन सामग्री की खोज को भी शिल्पविधि का अनिवार्य अंग मानते हैं। इस प्रकार कार्नर ने शिल्पविधि के एक नवीन क्षेत्र की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है।

साहित्यकार अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए एक बाह्य रूप की सहायता लेता है। इसके लिए वह भाषा एवं लिपि का सहारा लेता है। मारियन एलोट लिखते हैं कि "मैं समझता हूँ प्रत्येक कलाकार अपने रूप का निर्धारण स्वतः करता है।"[2] टालस्टाय ने भी रूप को ही महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसके बिना

---

1 "For technique is the means by which the writer's experience, which is the suvject mater, compels him to attend to it. Technique is the only means he has of discovering, exploring, developing his subject, of conveying its meaning and finally of evaluating it" 'Forms of Fiction' : Van O' Conner, Page-9

2 " I thik that every great artist necessarly creates his own forms also." 'Novelists on the Novels' : Edited by Marian Allot, Page-265

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

मनोभावों की अभिव्यक्ति को असम्भव बताया है। "जब तक रूप उपयुक्त नहीं होगा तब तक कोई भी कहानी, गीत, लय, चित्र, मूर्ति, नृत्य, आभूषण और इमारत अपने रचयिता की भावनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ होगी।"[1]

शिल्पविधि का आन्तरिक स्वरूप अप्रकट होने के कारण केवल उसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। लेकिन शिल्पविधि का बाह्य स्वरूप प्रकट है। इसमें भाषा और शब्दों के द्वारा साहित्यकार अपने मनोभावों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। साहित्यकार भाषा एवं शब्दों के माध्यम से ऐसा शब्द–चित्र प्रस्तुत करता है, जिससे उसमें सजीवता का आभास होने लगता है। इसी सजीवता के कारण वह पाठकों में रूचि पैदा करता है। भाषा और लिपि ही शिल्पविधि के वाह्य स्वरूप को प्रकट करने का माध्यम है, जिनकी सहायता से कृतिकार अपने मनोभावों को रूपायित करता है। यद्यपि साहित्य के विषय का सम्बन्ध उसकी रचना सामग्री से है और रूप का सम्बन्ध उसके आकार एवं अभिव्यक्ति से है लेकिन इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जार्ज एलन लिखते हैं "विषय को रूप के साथ बलात् नहीं जोड़ा गया है लेकिन यह उसका अभिन्न अंग है जो विषय की सम्पूर्ण जानकारी देने के अतिरिक्त इसके गूढ़तम अर्थ को प्रकट करता है।"[2] साहित्य का विषय और रूप दोनों ही साहित्य के अभिन्न अंग हैं यदि दोनों को पृथक कर दिया जाय तो साहित्य का बाह्य रूप अपना महत्त्व खो देता है।

शिल्प और शैली : शिल्पविधि के विविध पहलुओं को समझने के बाद शिल्प और शैली के अन्तर को जानना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि अनेक विद्वानों ने इनको एक ही माना है, जबकि इनमें अन्तर प्रतीत होता है। 'शिल्प'

---

1 "Unless the form be adequate no story, no song or tune or statue or dance or play or ornament or building can convey its creatures feeling." : 'What is Art' : Count Leo Tolstoey, Page-6

2 "Form is not an arbritary addition to content but an important and inseparable part of it, that gives the temporal, spatial and casual relations which effect the concurrent factors of the contents." : 'The Process of Literature' : Agnes Mure Machengie, Page-144

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

भावों को अभिव्यक्त करने की विभिन्न प्रक्रियाओं व रीतियों का नाम है, जबकि 'शैली' शब्द का अर्थ मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए उत्पन्न वैशिष्टता है।

शिल्प और शैली के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए शैली के स्वरूप को जानना आवश्यक है। शैली शब्द के लिए अंग्रेजी का Technique शब्द प्रयुक्त होता है। मिल्टन मूरी ने शैली के बारे में लिखा है "शैली से अभिप्राय उस विशिष्ट एवं वैयक्तिक शिल्पविधि से है, जिसके द्वारा हम किसी लेखक को पहचानते हैं।"[1]

आचार्य वामन ने शैली के लिए रीति शब्द का प्रयोग कर इसे 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को "साहित्य की आत्मा"[2] कहा है। साथ ही वे लिखते हैं "विशिष्ट पद रचना रीति"[3] अर्थात काव्य की विशेष रचना पद्धति ही रीति है। वामन ने रचना पद्धति की विशिष्टता को महत्व दिया है। शब्दकोश के अनुसार शैली शब्द का सम्बन्ध भी वाक्य रचना की विशिष्टता से है। "शैली का अर्थ–चाल, रीति, प्रणाली, वाक्य रचना की विशिष्टता आदि है।"[4] डॉ. नगेन्द्र रीति और शैली को एक ही मानते हुए लिखते हैं– "जिस प्रकार स्वभाव की अभिव्यक्ति का मार्ग रीति है, उसी प्रकार शील (स्वभाव) की अभिव्यक्ति पद्धति शैली है और उसके व्युत्पत्तिलब्ध अर्थ में भी वैयक्तिक तत्व मूलतः वर्तमान है।"[5]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी भी रीति और शैली को एक मानते हुए अपने निबन्ध में लिखते हैं– "रीति और शैली शब्दों में बहुत दूर तक समानार्थकता है। रीति और शैली का जो विषयगत स्वरूप प्रारम्भ में प्रचलित था, उसमें तो कोई विशेष अन्तर है ही नहीं, आधुनिक युग में कवि की शाब्दिक और

---

1 "Stule means that personal idias cracy of expression by which we recognize a writer." 'The Problem of Style' : Middleton Murray, Page-4

2 'काव्यलंकार सूत्र' 1/3/6 : आचार्य वामन

3 'काव्यलंकार सूत्र' 1/2/9 : आचार्य वामन

4 'प्रमाणिक हिन्दी कोष' : श्री रामचन्द्र वर्मा

5 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका' : डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ– 40

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

भाषागत योजनाओं के विवेचन में भी रीति ओर शैली शब्द समान अर्थ में व्यवहृत हो सकते हैं।"[1]

शिल्प और शैली के उपर्युक्त विवेचन के बाद स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही शब्दों का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से है। जिसके कारण इनके स्वरूप पर प्रायः निश्चिन्तता बनी रहती है। दोनों ही प्रायः एक जैसी प्रतीत होती हैं, लेकिन इनमें अन्तर पाया जाता है। शिल्पविधि के अन्तर्गत अभिव्यक्ति की समस्त रीतियाँ एवं विधियाँ आती हैं, अर्थात् इसमें अभिव्यक्ति की समस्त प्रविधियाँ सन्निहित होती हैं; जबकि शैली अभिव्यंजना की वह विधि है, जिसके द्वारा हम किसी साहित्यकार को पहचानते हैं। शिल्प के अन्तर्गत जहाँ अभिव्यक्ति की प्रक्रियाओं, विधियों एवं तरीकों को सम्मिलित किया जाता है, वहीं शैली के अन्तर्गत अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त विशिष्टता को सम्मिलित किया जाता है, रचनाकार अपनी रचना को पाठकों के समक्ष रखने के लिए भाषा एवं लिपि आदि का चयन कर उसको एक बाहरी आवरण अथवा रूप प्रदान करता है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यक्ति की विभिन्न प्रक्रियाओं से होता है, लेकिन शैली का सम्बन्ध अभिव्यक्ति के विशिष्ट प्रकार से है। शिल्प का क्षेत्र शैली की तुलना में बहुत व्यापक है। शिल्प का सम्बन्ध साहित्य के बाह्य और आन्तरिक अर्थात साहित्य के स्वरूप और विषय दोनों से ही होता है; जबकि शैली का सम्बन्ध विषय के साथ बिल्कुल भी न होकर केवल उसके बाह्य रूप के साथ होता है।

हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास : हिन्दी उपन्यास में प्रारम्भ से ही नित नवीन प्रयोग होते रहे हैं। प्रारम्भ में उपन्यास साहित्य का कोई निश्चित रूप नहीं था। तत्कालीन लेखकों ने विविध विषयों पर अनेक प्रकार के उपन्यासों की रचना की, जिनमें सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी–ऐयारी और जासूसी उपन्यास प्रमुख हैं। तत्कालीन सामाजिक उपन्यासों में उपदेशात्मकता

1 'रीति और शैली' : आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, पृष्ठ – 163–164

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

की प्रधानता है, लेकिन उसमें समाज के वास्तविक स्वरूप एवं उसकी गम्भीर समस्याओं के यथार्थ चित्रण का प्रयास नहीं के बराबर है।"[1]

प्रारम्भिक उपन्यासों का शिल्प : हिन्दी उपन्यास के उद्‌भव काल के उपन्यासों का शिल्प अनगढ़ था। उपन्यास का कोई निश्चित रूप व उद्‌देश्य नहीं होने के कारण लेखकों ने नये–नये प्रयोग किये। उपदेशात्मकता व मनोरंजन ही प्रधान विषय के रूप में रहा, जिसके कारण तत्कालीन समाज एवं उसकी विभिन्न समस्याओं की ओर ध्यान न देकर उन्होंने कल्पना प्रधान उपन्यासों की रचना की ओर प्रवृत्त हुए, परिणामस्वरूप तिलस्मी–एयारी व जासूसी उपन्यासों की रचना हुई। इन उपन्यासों में भी अनेक स्थानों पर उपदेशवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इन उपन्यासों में घटना वैचित्र्य की प्रधानता है। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है– "इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना–वैचित्र्य रहा; रस संसार, भावाविभूति या चरित्र–चित्रण नहीं।"[2] तिलस्मी उपन्यासों में रहस्य और रोमांच की भरमार थी। जिससे पाठक इनकी ओर आकर्षित हुए। जासूसी उपन्यास भी रहस्य और रोमांच से भरपूर थे।

प्राथमिक उपन्यासों में कथातत्व के स्थान पर घटना–वैचित्र्य को अधिक महत्व मिला है। इस काल में असाधारण, अप्राकृतिक, अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक घटनाओं की बहुलता थी। सामाजिक उपन्यासों में समाज की किसी न किसी समस्या को आधार बनाया गया है। हिन्दी के प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरू' में तत्कालीन समाज का चित्रण मिलता है। शिवनारायण श्रीवास्तव के शब्दों में "परीक्षा–गुरू की मौलिक विशेषता यही है कि उसमें सर्वप्रथम यथार्थ जीवन व्यापारों को कथा का विषय बनाया गया। न तो उसमें परंपरित ढंग की कोई प्रेम कहानी है और न विस्मयकारक घटना–विधान। तत्कालीन मध्यवर्गीय समाज तथा उसमें पलने वाले कतिपय व्यक्तियों का वास्तविक चित्रण ही इसका ध्येय

---

1 'हिन्दी उपन्यास' : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ– 24

2 'हिन्दी सहित्य का इतिहास' : रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ– 356

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

है।"[1] बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' दोनों में ही सदाचार और उपदेशवृत्ति की प्रधानता है। जगमोहन सिंह के 'श्यामास्वप्न' में एक ब्राह्मण कुमारी तथा क्षत्रिय कुमार के स्वच्छन्द प्रेम सम्बन्ध एवं विवाह–प्रस्ताव के चित्रण से तत्कालीन शिक्षित समाज में अंकुरित होती हुई नवीन एवं उदार सामाजिक चेतना का संकेत निहित है।"[2]

तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में काल्पनिकता ही कथा का मूल आधार है। जिसके द्वारा उपन्यासकार पाठकों के कौतुहल को बनाये रखता है। इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना था। यथार्थ जीवन की विविध घटनाओं से इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। "तिलस्मी उपन्यासों में घटना वैचित्र्य, रहस्यात्मकता एवं कोरी कल्पना के आधार पर एक मनोरंजक उपन्यास की सृष्टि की जाती थी, जिसका एकमात्र उद्देश्य पाठकों को चमत्कृत करना एवं उनका कोरा मनोरंजन करना होता था।"[3]

प्रारम्भिक उपन्यासों में कथा शिल्प पर अधिक ध्यान दिया गया। इनमें चरित्र शिल्प का स्थान गौण रहा। 'परीक्षा गुरू' में लेखक स्वयं ही पात्रों का परिचय पाठकों के सम्मुख रखता है। युगीन उपन्यासों में "व्यक्तित्व निर्माण की कला अज्ञात थी। पात्रों को न तो विकास स्वातंत्र्य ही मिला और न उनका सम्पूर्ण स्वरूप ही सामने आ सका।"[4] 'नूतन ब्रह्मचारी' में लेखक प्रत्यक्ष रूप से पात्रों का परिचय देता है। लेकिन इसमें स्त्री पात्रों का अभाव है। प्रारम्भिक उपन्यासों के पात्र सजीव स्वाभाविक प्रतीत होते हैं, लेकिन लेखक उन्हें अपने हाथों में नचाते हैं। इन उपन्यासों में आन्तरिक चरित्र–चित्रण का अभाव पाया जाता है। केवल पात्रों के बाह्यरूप की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

---

1 'हिन्दी उपन्यास' : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ– 27

2 'हिन्दी उपन्यास' : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ– 32

3 'हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक विकास' : कु0 शैलबाला, पृष्ठ–156

4 'हिन्दी उपन्यास' : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ– 55

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

युगीन उपन्यासों में वातावरण शिल्प के नाम पर प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन की अधिकता है। इन उपन्यासों में सूर्योदय एवं सूर्यास्त के प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन की अधिकता है। तिलस्मी व जासूसी उपन्यासों में रहस्यमय वातावरण बनाकर भयानक घटना की भयंकरता को प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

प्रारम्भिक युगीन उपन्यासों में भाषा का कोई निश्चित रूप विद्यमान नहीं था। चूँकि उपन्यास उस समय अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थे, इसलिए इनमें साधारण बोलचाल की भाषा का अधिक प्रयोग हुआ है। इसके साथ–साथ नीति वाक्यों व संस्कृत के विभिन्न पुस्तकों के उद्धरणों का प्रयोग हुआ है। "परीक्षा गुरू' में दिल्ली की साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है।"[1] तत्कालीन उपन्यासकारों ने कथानक और उपदेशात्मक शैली को अपनाया है। यहाँ तक की तिलस्मी व जासूसी उपन्यासों में भी उपदेशवृत्ति के दर्शन होते हैं।

युगीन उपन्यासों का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं था, फिर भी उसमें उपदेशात्मकता की प्रधानता है। समस्त उपन्यासों में नीति व शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं। सामाजिक उपन्यासों में तत्कालीन समाज की किसी न किसी समस्या को उठाया गया है। तिलस्मी व जासूसी उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना था। मनो–विनोद ही उनका लक्ष्य होने के कारण उपन्यासकार ने कल्पनाशीलता द्वारा रहस्य और रोमांच को बरकरार रखने का प्रयास किया है।

हिन्दी उपन्यास की प्रारम्भिक उपन्यासों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में कथा शिल्प, चरित्र शिल्प, वातावरण शिल्प एवं उद्देश्यगत शिल्प सभी अनगढ़ था। उपन्यास का उद्भव काल होने के कारण प्रयोग की प्रवृत्ति मिलती हे। कथा तत्व के स्थान पर घटना वैचित्र्य अधिक था। "वह युग एक प्रकार से कथा–प्रधान था, जिसमें लेखक स्वयं अपने

1 'हिन्दी उपन्यासों का प्रारम्भिक विकास' : कु0 शैलबाला, पृष्ठ– 66

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

श्रोताओं को कहानी सुनाता हुआ आगे बढ़ता जाता था।"[1] कालान्तर में हिन्दी उपन्यासों के शिल्प में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए और उनका शिल्पगत महत्व भी बढ़ा। "आरम्भिक युग के उपन्यासों का शिल्पगत महत्व सम्भवतः उतना नहीं है जितना आगे के उपन्यासों का। क्योंकि इस काल में लेखकों की दृष्टि अपने–अपने विषय तक सीमित थी। कुछ लेखक तो केवल उपदेश की दृष्टि से उपन्यास रचना कर रहे थे। किन्तु मात्र रचना की दृष्टि से जागरूक थे।"[2]

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का शिल्प : प्रारम्भिक उपदेश प्रधान, रहस्यमय एवं कल्पना प्रधान उपन्यासों के अनगढ़ शिल्प के बाद प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासों को एक निश्चित स्वरूप देकर यथार्थ चित्रण का प्रयास किया। मनोरंजन और चमत्कार की परम्परा को छोड़कर प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर उन्मुख किया। इस युग के उपन्यासों में समाज की विभिन्न समस्याओं को उठाया गया। "प्रेमचन्दयुगीन सभी उपन्यासों ने भारतीय समाज में नारी की असहायता को ठीक–ठीक अनुभव किया।"[3] प्रेमचन्द ने दहेज, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, बहु विवाह, बालविवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। प्रेमचन्द ने जहाँ समाज की ज्वलन्त समस्याओं को चित्रित किया है, वहीं उनके समाधान की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है, लेकिन प्रसाद ने युगीन समस्याओं को चित्रित करने के बाद भी उनका कोई आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। वृन्दावनलाल वर्मा और उग्र ने अपने उपन्यासों में रूमानी प्रेम को प्रमुख आधार बनाया है। "इस युग के उपन्यासों में धार्मिक ढोंग, वाह्य आडम्बर तथा जाति प्रथा की कटुता का भी खूब चित्रण हुआ है।"[4] जातीय सुधार की

---

1 'हिन्दी उपन्यास' : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ– 54

2 'हिन्दी उपन्यास में खलपात्र' : डॉ. सरोजनी अग्रवाल– पृष्ठ– 43–44

3 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : डॉ. श्यामसुन्दर घोष, पृष्ठ–39

4 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : डॉ. श्यामसुन्दर घोष, पृष्ठ–48

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

भावना, नारी समस्या, सामाजिक कुरीतियाँ, अन्धविश्वास, धार्मिक आडम्बर आदि के सुधार की प्रवृत्ति तत्कालीन उपन्यासों में देखने को मिलती है।

प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में चरित्र–चित्रण में भी युगान्तकारी परिवर्तन हुए। "प्रेमचन्द तथा उनके युग के अन्य उपन्यासकार इस तथ्य में विश्वास करते थे कि कला का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व के सबसे महत्वपूर्ण मोड़ का चित्रण करना है।"[1] यही कारण है कि तत्कालीन उपन्यासों में मानव के आन्तरिक स्वरूप का विश्लेषण करना महत्वपूर्ण माना जाने लगा। प्रेमचन्द पात्रों के चरित्र–चित्रण को सामाजिक चेतना के साथ मनोविज्ञान के धरातल पर उतार लाए। उन्होंने चरित्र–चित्रण में व्यावहारिक मनोविज्ञान को आधार बनाया।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में ग्रामीण व नगरीय दोनों ही प्रकार के वातावरण का सजीव वर्णन मिलता है। युगीन राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक स्थिति एवं उनकी विभिन्न समस्याओं का चित्रण इनमें हुआ है। तत्कालीन समाज के रीति–रिवाजों, रहन–सहन, आचार–विचार एवं विभिन्न घटनाओं का सजीव वर्णन हुआ है। प्राकृतिक, सामाजिक, ग्रामीण, नगरीय सभी प्रकार के दृश्यों की सटीक योजना इन उपन्यासों में मिलती है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में वातावरण सृजन के लिए प्राकृतिक दृश्यों का सहारा लिया है। "जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छायी हुई लालिमा को अपने रजत प्रताप से तेज करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गर्मी आने लगी थी।"[2] निम्नवर्ग, मध्यवर्ग एवं किसानों के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास इस युग में हुआ है। इनमें सामाजिक समस्याओं के अनुरूप वातावरण का सृजन हुआ है। वातावरण सृजन में उपमाओं का सहारा भी लिया गया है।

भाषा और शैली शिल्प प्रेमचन्द युग में उत्तरोत्तर विकसित होता गया। प्रारम्भिक उपन्यासों के कल्पनाशील व आलंकारिक भाषा के स्थान पर

---

1 'हिन्दी उपन्यास में खलपात्र' : डॉ. सरोजनी अग्रवाल– पृष्ठ– 47

2 'गोदान' : प्रेमचन्द, पृष्ठ – 7

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

मुहावरेदार, चित्रात्मक, भावनात्मक, व्यंजनाप्रधान एवं तत्सम शब्दावली का प्रयोग युगीन उपन्यासों में होने लगा। शैली में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इन उपन्यासों में वर्णन प्रधान, ओजस्वी व काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है।

आलोच्ययुगीन उपन्यासों में उद्देश्यगत शिल्प की ओर अधिक ध्यान दिया गया। युगीन जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य था। "प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों का उद्देश्य दुहरा था एक ओर तो इन्हें देश को अंग्रेजी दासता से मुक्त करना था और दूसरी ओर अनेक सामाजिक बन्धनों से भी जूझना था।"[1] उपन्यासों के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही उनका नामकरण भी हुआ है। समाज की विभिन्न कुप्रथाओं, नारी समस्या, विधवा विवाह, निम्नवर्ग व किसानों का शोषण, बाल विवाह, दहेज समस्या आदि अनेक विषयों को उद्घाटित कर उनका सही विश्लेषण करना इनका प्रमुख ध्येय था। "प्रेमचन्द समाज में व्याप्त विषमता को उपन्यासों के माध्यम से दूर करना चाहते थे, उनके इस प्रयास में उनके सहयोगियों ने भी साथ दिया। इस युग में प्राचीन रूढ़ियों का खण्डन तथा नयी विचारधारा का प्रतिपादन किया है।"[2]

इस प्रकार प्रेमचन्द युगीन उपन्यास अपने प्रारम्भिक कालीन अनगढ़ शिल्प को छोड़कर नवीन यथार्थवादी शिल्प की ओर उन्मुख हुई। "प्रेमचन्द युग में उपन्यास कला निरन्तर परिपक्वता को प्राप्त होती गई। नीति एवं उपदेश के सीमित घेरे से निकाल कर वह मानव जीवन के बहुमुखी चित्रण, उत्थान, पतन समाज की समस्याओं और मानव चरित्र के विश्लेषण की ओर अग्रसर हो रही थी।"[3] वास्तविक शिल्प का विकास प्रेमचन्द युग में ही हुआ।

---

1 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : डॉ. श्यामसुन्दर घोष, पृष्ठ – 51

2 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास' : डॉ. तहसीलदार दूबे, पृष्ठ– 26

3 'हिन्दी उपन्यास में खलपात्र' : डॉ. सरोजनी अग्रवाल, पृष्ठ – 49

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों का शिल्प : प्रेमचन्द युग के बाद हिन्दी उपन्यासों में जबरदस्त बदलाव आया। इस अवधि में उपन्यास क्षेत्र में अनेक प्रयोग हुए। उपन्यासों के क्षेत्र में वर्ण्य–विषय, कथा शिल्प, चरित्रांकन, जीवनानुभूति आदि अनेक दृष्टियों से विविधता आयी। उपन्यासकारों ने सभी क्षेत्रों में उपन्यास को सशक्त बनाने का प्रयास किया। पाश्चात्य उपन्यासकारों के प्रभाव के फलस्वरूप नवीन शिल्पविधि का निर्माण होने लगा। "इस युग के उपन्यासकारों ने प्रेमचन्दीय आदर्शवादी परम्परा का परित्याग कर समाज में नये मानदण्डों की स्थापना की।"[1] सामाजिक, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक, यथार्थवादी, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक आदि अनेक प्रकार के उपन्यासों की रचना इस युग में हुई। "प्रेमचन्दोत्तर युग में वैज्ञानिक विचारधारा की प्रमुखता ने वस्तुओं को देखने–परखने की नवीन दृष्टि दी।"[2] उपन्यासों में मनोविश्लेषण का प्रभाव बढ़ गया। आंचलिकता और प्रगतिशील चेतना का विकास हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन उपन्यासकार कथावस्तु के प्रति अत्यधिक सजग रहे हैं। उस समय की सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक परिस्थितियाँ निरन्तर परिवर्तित हो रही थी। परिणामस्वरूप उपन्यासों के कथा–शिल्प में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। "प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास अधिकांश साधारण से विशेष, समूह से व्यक्ति, आदर्श से यथार्थ, परम्परा से प्रयोग, आस्था से अनास्था की ओर उन्मुख हैं।"[3] प्रेमचन्दयुगीन साधारण मनोविज्ञान में निरन्तर विकास होता रहा, जिससे उपन्यासों में कथातत्व के स्थान पर मनोविश्लेषण बढ़ा। उपन्यासकारों ने मनुष्य की बाह्य क्रिया–कलापों के स्थान पर उसकी आन्तरिक क्रिया–कलापों को सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया, जिससे इनमें कथातत्व गौण हो गया। "युगीन उपन्यासों का एक प्रधान आकर्षण गहरी समस्याओं, दार्शनिक ऊहापोहों,

---

1 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में शिल्पविधि का विकास' : डॉ. तहसीलदार दूबे, पृष्ठ–40

2 'हिन्दी उपन्यास' : डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ – 274

3 'हिन्दी उपन्यास' : डॉ. शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ – 433

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

सामाजिक चिंतन तथा मनोवैज्ञानिक भूमिकाओं के बावजूद उनका सजीव कथानक तथा उसे पाठकों के समझ प्रस्तुत करने वाली उनकी जीवंत चरित्र सृष्टि ही है।"[1] इस युग में नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना हुई और उपन्यासकारों ने कथा को रोचक बनाने का प्रयास किया। इस युग में कथानकों में नवीन प्रयोग भी हुए। अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' में पूर्वदीप्ति की पद्धति द्वारा नायक शेखर की स्मृतियों का अंकन हुआ है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा संस्कृत कथा–आख्यायिका के ढंग से डायरी शैली में लिखा गया है। 'कादम्बरी' में संस्कृत कथा–आख्यायिका शैली के साथ–साथ चरित्र–चित्रण की आधुनिक शैली का प्रयोग हुआ है। आंचलिक उपन्यासों में फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल' एक नवीन प्रयोग है, जिसमें बिहार के पूर्णियाँ जिले के मेरीगंज की कथा कही गयी है।

युगीन उपन्यासों में मनोविज्ञान के प्रयोग के कारण चरित्र शिल्प में गहराई आयी। उपन्यासों में पात्रों के बाह्य रूप को छोड़कर उनके आन्तरिक स्वरूप का चित्रण किया गया है। इस युग में स्थूल चरित्र के स्थान पर सूक्ष्म चरित्रों का विकास हुआ। ऐसे विवेक सम्पन्न पात्रों का चयन किया गया, जिनमें मानसिक द्वन्द्व की सामर्थ्य हो। असाधारण, चिन्तनरत, जटिल एवं विकृत और रहस्यमय पात्रों को स्थान मिला। समाज के सभी वर्ग के पात्रों को प्रतिनिधित्व मिला। नारी पात्रों को भी समुचित स्थान मिला। सामाजिक उपन्यासों में समाज के सभी वर्गों के पात्रों को स्थान मिला है। इनमें शोषित, किसान व मजदूर वर्ग भी है और आतंक, अत्याचार व शोषण का प्रतीक जमीदार व पूँजीपति वर्ग भी। प्रेमचन्द का 'गोदान' व नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'वरूण के बेटे' में इस प्रकार के पात्रों के दर्शन होते हैं। उच्चवर्ग व जमीदारों के विलासितापूर्ण जीवन, काम प्रवृत्ति और शोषण का चित्रण भी युगीन उपन्यासों में हुआ है। राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' में देशबन्धु जी के माध्यम से उनके दुहरे चरित्र को

1 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : डॉ. शिवकुमार घोष, पृष्ठ – 82

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

उजागर किया गया है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग इन उपन्यासों में मिलते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों की संख्या कम हो गयी है। गिने–चुने पात्रों का ही मनोविश्लेषण हुआ है। अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, देवराज, भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि अनेक उपन्यासकारों ने पात्रों के मनोविश्लेषण को प्रमुखता दी है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में वातावरण सृजन अधिक सशक्त और स्वाभाविक हुआ है। वातावरण का सृजन ऊपरी तड़क–भड़क और सजावट के लिए न होकर विशेष उद्देश्य और स्थिति के अनुसार हुआ है। मानव मन के आन्तरिक चित्रण को सजीव बनाने के लिए वातावरण का भरपूर प्रयोग किया गया है। यथानुसार प्राकृतिक दृश्यों का सहारा भी लिया गया है। राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक वातावरण का सृजन करने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनों का चित्रण हुआ है, वहीं ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

वस्तु एवं चरित्र शिल्प के साथ ही इस युग में भाषा और शैली में भी परिवर्तन हुआ। नवीन साहित्यिक शैलियों का विकास हुआ। सरल व सुस्पष्ट भाषा का प्रयोग युगीन उपन्यासों में मिलता है। जहाँ पर राजनीतिक अथवा सामाजिक विषमताओं पर व्यंग्य कसे हैं, वहाँ पर भाषा व्यंग्यात्मक हो गयी है। कहीं–कहीं वर्णन प्रधान और चित्रात्मक भाषा के दर्शन भी होते हैं। किसी स्थिति या घटना का प्रभावशाली वर्णन के लिए उपमाओं का खुलकर प्रयोग हुआ है। प्राकृतिक और भावुक दृश्यों के वर्णन में काव्यमयी भाषा के दर्शन होते हैं। "मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, मुक्त आसंग शैली, डायरी शैली को अपनाया गया है।"[1] 'प्रतीकों और बिम्बों का प्रयोग भी इन उपन्यासों में प्रमुखता से हुआ है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक

---

1 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : डॉ. श्यामसुन्दर घोष, पृष्ठ – 66

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

विषमताओं का वास्तविक चित्रण किया गया है। राजनीतिक उपन्यासों में युगीन राजनीति की सारी ऊहापोहों का वर्णन है, वहीं मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव के विकास में बाधक तत्वों के साथ–साथ मानव मन की विभिन्न पशु प्रवृत्तियों का चित्रण हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाया गया है और उनका नामकरण भी ऐतिहासिक विभूतियों के नाम पर हुआ है।

इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में हिन्दी उपन्यास का शिल्प निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढ़ता रहा और उसमें नवीन शिल्प का समावेश होता गया। "नवीन विषयवस्तु, नूतन चेतना, सूक्ष्म संवेदना, कुण्ठित व्यक्तित्व, जटिल परिस्थितियों आदि के वर्णन प्रयास में पुरानी शैली असफल सिद्ध हुई।"[1] इस युग में सामाजिक, मार्क्सवादी, मनोवैज्ञानिक, यथार्थवादी, ऐतिहासिक, राजनीतिक, आंचलिक आदि अनेक प्रकार के उपन्यासों का सृजन हुआ। कथा तत्व में मनोविश्लेषण बढ़ा, चरित्र–चित्रण में सूक्ष्म विवेक सम्पन्न चरित्रों का विकास हुआ, जो मानसिक द्वन्द्व में समर्थ थे। सभी वर्गों के पात्रों को स्थान मिला, नारी पात्रों को भी उचित प्रतिनिधित्व मिला, वातावरण सृजन विशेष उद्देश्य और स्थिति को ध्यान में रखकर किया जाने जगा। नवीन साहित्यिक शैलियों का विकास एवं सरल व सुस्पष्ट भाषा तत्कालीन उपन्यासों में प्रकटित होने लगी। इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास समाज में नवीन मानदण्ड स्थापित करने में सफल सिद्ध हुआ।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन उपन्यास का शिल्प : स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न देशों में साहित्य और संस्कृति का आदान–प्रदान होने के कारण हिन्दी उपन्यास साहित्य में विदेशी प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। "स्वतंत्रता से आज तक जितने भी उपन्यास सामने आए, वे शिल्पविधि की दृष्टि से अभिनव प्रयोग ही माने जाएँगे। अधिकांश हिन्दी उपन्यासों में पाश्चात्य प्रभाव के कारण

1 'हिन्दी उपन्यास' : शिवनारायण श्रीवास्तव, पृष्ठ – 436

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

नवीनता आई है।"[1] स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न हुई विभिन्न समस्याओं – गरीबी, बेरोजगारी, नारी की दयनीय स्थिति, अशिक्षा आदि अनेक समस्याओं को उपन्यासकारों ने अपना विषय बनाया। आदर्शवाद व मनोविज्ञान को छोड़कर हिन्दी उपन्यास पूर्णतः यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुआ। "स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के वर्षों में यथार्थवादी कला हिन्दी साहित्य का एकमात्र आधार बन गई है।"[2] इस युग में शिल्प में नित नवीन प्रयोग होने लगे । उपन्यासों की अनेक प्रवृत्तियों का विकास हुआ। "शिल्पविधि की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युगीन उपन्यास विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। पूर्ववर्ती उपन्यासों की परम्परा का निर्वाह इस युग में भी किया गया है, किन्तु विशेष परिवर्तन के साथ। इस युग में प्रचलित हिन्दी उपन्यास की अनेक प्रवृत्तिया अपनी विशेष शिल्पविधि का प्रतिनिधित्व करती हैं।"[3]

स्वतंत्रता के बाद भारत में सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप युगीन उपन्यासों के वस्तु शिल्प में भी अनेक परिवर्तन हुए। "व्यक्ति में ही समाज का अध्ययन किया जाने लगा। अतः उपन्यास चरित्र प्रधान होने लगे तथा उसमें आए चरित्र 'टाइप' होने लगे। घटनाओं, समस्याओं कार्यों एवं विचारों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन होने लगा।"[4] यथार्थवाद इस युग के उपन्यासों का आधार बन गया। इस युग में ऐतिहासिक व आंचलिक उपन्यासों का पूर्णतः विकास हुआ है। सामाजिक उपन्यासों में स्वतंत्रता के बाद की विभिन्न समस्याओं व उनसे प्रभावित व्यक्ति व समाज का व्यापक चित्रण हुआ है। आंचलिक उपन्यासों में किसी अंचल विशेष के रहन–सहन, समाज व आर्थिक जीवन को आधार बनाया गया है। "कथा–विन्यास में वैविध्य एवं वस्तुनिष्ठता इन

---

1 'स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि' : डॉ. तहसीलदार दूबे, पृष्ठ – 58

2 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' : डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान, पृष्ठ – 189

3 'स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि' : डॉ. तहसीलदार दूबे, पृष्ठ – 56

4 'स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि' : डॉ. तहसीलदार दूबे, पृष्ठ – 57

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

उपन्यासों की विशिष्टता है।"[1] मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में मनोविश्लेषण बढ़ा है। वस्तु शिल्प के क्षेत्र में वर्तमान उपन्यासकारों ने कुछ नवीन उपलब्धियाँ हासिल की हैं। "वर्तमान जीवन की गति–अगति, समस्याओं और विकासोन्मुख प्रवृत्तियों, आर्थिक एवं सांस्कृतिक नव–निर्माण की आकांक्षाओं एवं संघर्षों को एक दिशा देने वाले वर्तमान जीवन को अपने उपन्यासों की कथावस्तु बनाना इन उपन्यासों की वस्तुगत नवीन उपलब्धि कही जा सकती है।"[2]

वस्तु शिल्प की तरह ही चरित्र शिल्प में भी युगीन उपन्यासों में नवीन प्रयोग हो रहे हैं। युगीन उपन्यासों में द्वन्द्वग्रस्त पात्रों के दर्शन होते हैं। व्यक्ति विशेष के माध्यम से जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है। युगीन उपन्यासों में पात्रों के अन्तर की विभिन्न प्रवृत्तियों को उघाड़कर उनके वास्तविक रूप को प्रकट किया गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों के माध्यम से विभिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की व्याख्या हुई है। आंचलिक उपन्यासों में पात्रों की भीड़ के बाद भी किसी भी पात्र का स्थायी प्रभाव पाठकों पर नहीं पड़ता है। स्थान विशेष का चित्रण होने के कारण इनमें नायक–नायिका का अभाव पाया जाता है। "स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में चरित्र–चित्रण सम्बन्धी सबसे महत्वपूर्ण घटना उनका नायक–नायिका विहीनत्व है।"[3] इसके अतिरिक्त युगीन उपन्यासों में नारी–पुरूषों के उन्मुक्त प्रेम सम्बन्धों को उद्‌घाटित किया है। प्रेम विवाह व सैक्स की प्रवृत्ति प्रधान हो उठी है। नारी चरित्रों के माध्यम से नारी की दयनीय स्थिति का वास्तविक वर्णन इनमें मिलता है। नारी पात्रों का वर्णन पुरूष पात्रों की अपेक्षा अधिक संघर्षशील, जागरूक और संवेदनशील रूप में हुआ है।

---

1 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' (आंचलिक उपन्यास : डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त) पृष्ठ 100

2 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' : डॉ. रामगोपाल सिंह चौहान, पृष्ठ – 272

3 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प) डॉ. त्रिभुवन सिंह पृष्ठ – 173

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में वातावरण सृजन में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उपन्यासकारों ने वातावरण सृजन का ध्यान रखा है। "देशकाल और वातावरण अब मूल कथ्य बन गये और किसी स्थान विशेष को उसकी सम्पूर्णता में चित्रित कर देना उपन्यासकार को अभीष्ट हो गया है।" [1] कथावस्तु, चरित्र–चित्रण एवं उद्‌देश्यगत शिल्प को ध्यान में रखकर ही वातावरण का निर्माण हुआ है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति की अहंता, कुंठा, मनोवृत्ति एवं रहस्यमयता के उद्‌घाटन के लिए व्यक्ति की मानसिक दशा, तनाव आदि पर आधारित मनोवैज्ञानिक वातावरण का सृजन हुआ है। वातावरण सृजन में आन्तरिक स्वरूप के दर्शन होते हैं, लेकिन आंचलिक उपन्यासों में बाह्य वातावरण का सृजन हुआ है। स्थान विशेष के रीति–रिवाजों, प्रथाओं और परम्पराओं के आधार पर वातावरण सृजन किया गया है।

आलोच्ययुगीन उपन्यासों में भाषा और शैलीगत शिल्प के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व निखार आया। "मन के गूढ़ातिगूढ़ अनुभूतियों की अभिव्यक्ति स्पृहा से उसकी व्यंजक शक्ति और प्रतीकात्मकता का विशेष संवर्धन हुआ। किन्तु इसके साथ ही उसकी दुरूहता की भी अभिवृद्धि हुई।"[2] आंचलिक उपन्यासों में स्थानीय भाषा का प्रयोग हुआ है। स्थान विशेष की कथा एवं भाषा ही इनकी विशिष्टता है। बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग भी हुआ है। शैली की दृष्टि से इनमें आत्मकथात्मक, रेखाचित्रात्मक, रिपोर्ताज, डायरी, पत्रात्मक, व्यंग्यात्मक चेतना प्रवाह आदि अनेक शैलियों का प्रयोग इन उपन्यासों में हो रहा है। आत्मकथात्मक शैली के कारण उपन्यासों में आत्मकथा का भ्रम होता है। उपन्यासों के छोटे आकार के कारण कहानी होने का भ्रम पैदा होता है। युगीन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में चित्रात्मक, उपमाप्रधान, दार्शनिक और काव्यमयी भाषा का प्रयोग हुआ है। पात्रों की अहंभावना, स्वार्थपरता और प्रतिहिंसा जैसी

---

1 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : (स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प) डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ – 174

2 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प' : डॉ. त्रिभुवन सिंह, पृष्ठ – 174

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

मनोवृत्तियों का स्पष्टीकरण करने के लिए विश्लेषणात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन उपन्यासों का उद्देश्य स्वतंत्रता के पश्चात् उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का अंकन कर उनके निवारण पर बल देना था। इसी आधार पर इन उपन्यासों की गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी एवं विभाजन के पश्चात् उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का अंकन हुआ है। आंचलिक उपन्यासों में स्थान विशेष की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व आर्थिक जीवन एवं वहाँ के रीति–रिवाजों एवं रहन–सहन आदि को उद्घाटित किया गया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का उद्देश्य मानव मन की विभिन्न प्रवृत्तियों का उद्घाटन करना है। लेकिन नवीन उपन्यासों का मुख्य विषय नारी जीवन व सैक्स के चारों ओर घूम रहा है। उन्मुक्त यौन सम्बन्धों के वर्णनों की भरमार हुई है। प्रेम प्रसंगों को महत्त्व दिया जा रहा है। "नारी व पुरूष के प्रेम सम्बन्धों में आध्यात्मिक पवित्रता नहीं रही।"[1] उसका निरन्तर ह्रास हो रहा है।

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर युगीन उपन्यासों ने वस्तु शिल्प, चरित्र शिल्प, वातावरण शिल्प एवं भाषा शैलीगत शिल्प के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। लगातार बदल रही विभिन्न परिस्थितियों एवं जीवन शैली का वर्णन करने में हिन्दी उपन्यास सक्षम है। जहाँ एक ओर इसमें मनोवैज्ञानिक पद्धति से पात्रों के आन्तरिक प्रवृत्तियों को प्रस्तुत कर उनका विश्लेषण किया है, वहीं दूसरी ओर आंचलिक उपन्यासों में किसी स्थान विशेष की विभिन्न समस्याओं को उठाया गया है। युगीन उपन्यासों में यथार्थवादी परम्परा को विशेष बल मिला है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्तिवादी परम्परा के दर्शन होते हैं।

वर्तमान समय में कुछ उपन्यासकारों ने उन्मुक्त यौन–व्यापारों के वर्णन को प्रधानता दी है। नारी व पुरूष के अन्तरंग सम्बन्धों को उद्घाटित कर सस्ती

---

1 'हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष' : (स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी साहित्य एक परिदृश्य– रामदरश मिश्र) पृष्ठ – 96

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/

लोकप्रियता हासिल करने में लगे हैं। विभिन्न राजनीतिक आर्थिक व सामाजिक विषयों पर लिखने की कला नगण्य हो गयी है। पाश्चात्य उपन्यासों के प्रभाव से उसमें अभिनव प्रयोग हो रहे हैं। "उपन्यासकारों का उद्देश्य किसी समस्या, घटना, चरित्र अथवा वर्णन से न होकर अभिनव प्रयोग से हो गया है, जितने भी उपन्यास लिखे जा रहे हैं, उतने ही प्रयोग शिल्प के क्षेत्र में हो रहे हैं किसी निश्चित ढंग या पद्धति का अभाव है। अतः किसी पद्धति या विधि का निर्धारण करना असुविधाजनक है।"[1]

इन सभी दोषों के बाद भी हिन्दी उपन्यास आज एक लोकप्रिय विधा बन चुकी है। वर्तमान परिदृश्य को व्यक्त करने में समर्थ है। हिन्दी साहित्य को प्रतिवर्ष एक से एक उत्कृष्ट रचनाएँ प्राप्त हो रही हैं, जो अपनी शिल्प विविधता एवं उत्कृष्टता के कारण पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम हैं। नये–नये उपन्यासकार समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्याओं को बड़े नाटकीय ढंग से प्रस्तुत कर अपनी वैशिष्टता का परिचय दे रहे हैं।

❖❖❖❖

1 'स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी उपन्यासों की शिल्पविधि' : डॉ. तहसीलदार दूबे, पृष्ठ – 56

Estelar

Created with Print2PDF. To remove this line, buy a license at: http://www.software602.com/